वाराणसी में वेद शिक्षण की गुरुकुल परम्परा का प्रलेखीकरण

रीना पराड़कर

28-6/ ICH-Scheme/68/2014-15/12798

वाराणसी में वेद शिक्षण की

गुरुकुल परम्परा का प्रलेखीकरण

रीना पराड़कर

के.31 / 74,

चंवर गली, भैरवनाथ,

वाराणसी-221001

bapatreena@gmail.com

अध्याय

0 प्रस्तावना

0 वाराणसी-एक प्राचीन सांस्कृतिक नगरी

0 प्राचीन काल में वाराणसी में वेद शिक्षण

0 वेदशिक्षण की गुरूकुल परंपरा एवं वर्तमान स्थिति

0 याज्ञवल्क्य काण्व वेद पाठशाला, सांगवेद विद्यालय एवं अन्य

0 वाराणसी के प्रसिद्ध विद्वान, वेद पंडित

0 उपसंहार

0 चित्र वीथिका

प्रस्तावना

वाराणसी न सिर्फ भारत बल्कि विश्व की प्राचीनतम नगरी है। काशी और बनारस नाम से भी प्रसिद्ध इस नगरी को देश की सांस्कृतिक राजधानी भी कहा गया है। ऐसा इस कारण है कि यह ज्ञान की नगरी है, साहित्य, संगीत और कला की नगरी है। शिक्षा, साहित्य, संगीत और कला की परंपराएं यहां शताब्दियों से हैं। प्राचीन काल में किसी भी विद्वान की विद्वता के लिए काशी की सहमति या स्वीकृति अनिवार्य थी। उन्हें यहां आकर विद्वानों से शास्त्रार्थ भी करना होता था।

वाराणसी विद्वानों, ब्राह्मणों, कवियों, संगीतकारों का निवास स्थल रहा है। जातकों में यह माना गया है कि वाराणसी में कभी तक्षशिला तक से लोग अध्ययन के लिए आया करते थे। प्राचीन काल से वाराणसी वेद अध्ययन की प्रमुख नगरी रही है। यहां गुप्तकाल की जो मुद्राएं मिली हैं उनसे वेदों की शिक्षा के लिए प्राय: प्रत्येक मंदिरों में पाठशाला की व्यवस्था का पता चलता है। गाहडवाल युग में यहां शिक्षा का उद्देश्य था-'वेद पढव, स्मृति अभ्यसवि, पुराण देखव, धर्म करव ' अर्थात हमें वेद पढ़ना चाहिए, स्मृतियों का अभ्यास करना चाहिए, पुराणों को देखना

चाहिए और धर्म करना चाहिए। महमूद गजनवी के आक्रमण के बाद वाराणसी संस्कृत शिक्षा का इसलिए एकमात्र केन्द्र हो गया क्योंकि पश्चिम भारत, पंजाब और कश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान यहां आकर बसने लगे।

इतिहास के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों को भारतीय संस्कृति और साहित्य का प्रमुख स्रोत माना जाता है। यह भारतीय ज्ञान और परम्परा का प्रमुख साधन है। वेदों में संस्कृत का प्राचीनतम रूप मिलता है और इनमें ज्ञान, परम्परा, काव्य, दर्शन, कर्मकाण्ड, खगोल, गणित, ज्योतिष का भण्डार है। चार वेद ज्ञान के अथाह सागर हैं। वेदों में स्वर का विवेचन भी किया गया है। जब स्वरों के साथ वेद पाठ होता है तो वह एक अविस्मरणीय अवसर बन जाता है। प्राचीनतम गायन शैली ध्रुपद का आरम्भ सामवेद से माना जाता है। वेद को श्रुति परम्परा माना गया है। यूनेस्को ने इसे प्राचीनतम सांस्कृतिक धरोहर के रूप में मान्यता दी है।

वाराणसी के साथ खास बात यह भी है कि यह एक ऐसा नगर है जिसने आधुनिकता की ओर कदम बढ़ाने के बावजूद अपनी परम्पराओं को नहीं

छोड़ा है। प्रसिद्ध साहित्यकार हजारीप्रसाद द्विवेदी कहा करते थे कि यह एक ऐसा नगर है जिसका एक पैर आधुनिकता की ओर भले ही बढ़ा हो लेकिन दूसरा पैर अपनी परंपराओं में गहरे तक धंसा हुआ है। प्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह इस नगर के बारे में अपनी कविता बनारस में कहते हैं, 'इस शहर में धूल धीरे-धीरे उड़ती है, धीरे-धीरे चलते हैं लोग, धीरे-धीरे बजते हैं घण्टे, शाम धीरे-धीरे होती है, यह धीरे-धीरे होना, धीरे-धीरे होने की सामूहिक लय, दृढ़ता से बांधे है समूचे शहर को, इस तरह कि कुछ भी गिरता नहीं है, कि हिलता नहीं है कुछ भी, कि जो चीज जहां थी, वहीं पर रखी है, कि गंगा वहीं है, कि वहीं पर बंधी है नांव, कि वहीं पर रखी है तुलसीदास की खड़ाऊं, सैकड़ों बरस से'।

कई प्राचीन परंपराएं हैं वाराणसी में शताब्दियों बाद भी नजर आती हैं। आधुनिकता के तमाम दबावों के बावजूद वाराणसी ने इन्हें छोड़ा नहीं है। वेद का अध्ययन-अध्यापन और उसकी गुरुकुल परम्परा एक ऐसी ही सांस्कृतिक-शैक्षिक परंपरा है जिसे वाराणसी में आज भी देखा जा सकता है। यह परंपरा कम जरूर हो गई है लेकिन कई विद्वान और गुरू इसको

आज भी अपनाए हुए हैं। हालांकि वाराणसी में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय सहित विभिन्न संस्थानों में वेद अध्ययन होता है लेकिन ऐसी संस्थाएं एवं आचार्य भी हैं जो पाठशालाओं, घरों, छोटे-छोटे विद्यालयों में गुरुकुल पद्धति में वेदों की शिक्षा देते हैं। शिक्षण की यह परंपरा प्राचीन गुरुकुल परम्परा की तरह है। यहां गुरुकुल प्रणाली से वेद शिक्षण करने वाले कई संस्थाएं, पाठशालाएं और गुरु हैं। यहां वर्षों से वेद की विभिन्न शाखाओं की शिक्षा दी जा रही है। वाराणसी तथा दूसरे नगरों से बाल, किशोर और युवा वेद का अभ्यास करते हैं और शिक्षा ग्रहण करते हैं।

प्रसिद्ध कथाकार चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने वाराणसी पर आधारित एक आलेख में कभी इसी वेद शिक्षण का जिक्र किया था जिसका भाव था कि सुबह-सुबह ही नींद खुल जाती है क्योंकि वेद शिक्षण का सस्वर गान कानों में पड़ने लगता है। वाराणसी के कई इलाकों में यह स्थिति आज भी है। ऐसे गुरुकुलों को सरकारों या संस्थाओं से प्रायः नाम मात्र की सहायता ही मिलती है। मुख्यतः निजी प्रयासों से वाराणसी के ऐसे

गुरुओं और विद्वानों ने इस सांस्कृतिक धरोहर को संभाल कर रखा है और इसे लुप्त होने से बचाने के लिए अगली पीढ़ी को सौप रहे हैं।

यह भी सत्य है कि आज वेद अध्ययन की प्रवृत्ति घटी है जिससे वेद की ऋचाओं, वैदिक मंत्रोच्चार की शैलियों के लुप्त होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। यज्ञों, कर्मकाण्डों के कम होने से भी युवाओं की इसमें रुचि घटी है। वैदिक ऋचाएं हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं। इन्हें भविष्य के लिए संरक्षित किए जाने और युवा पीढ़ी को इस धरोहर को सौंपे जाने की जरूरत है। इस दिशा में वे विद्धान और गुरु महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं जो गुरुकुल परम्परा में वेद का शिक्षण दे रहे हैं।

वाराणसी आरम्भ से ही वेद अध्ययन का केन्द्र रही है। वाराणसी के ऐसे गुरुकुलों के बारे में जानना एक रोचक अनुभव से गुजरना है। यह परियोजना इसी दिशा में एक अध्ययन प्रस्तुत करती है।

वाराणसी - एक प्राचीन

सांस्कृतिक नगरी

वाराणसी विश्व की प्राचीनतम सांस्कृतिक नगरी है। यह साहित्य, संगीत और कला के साथ ही शिक्षा और ज्ञान का केन्द्र रही है। यह विश्व के प्राचीनतम नगरों में से एक है। ज्ञान की नगरी होने के कारण इसे 'सिटी आफ लाइट' भी कहते हैं। यह गंगा तट पर स्थित है ज्ञान, कला, संगीत, साहित्य की दृष्टि से काफी सम्पन्न है। यहां की बनारसी साड़ी, पान, मिठाइयां, ठण्डई काफी प्रसिद्ध है। यहां काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ जैसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय हैं। कालीन का प्रसिद्ध क्षेत्र भदोही, बौद्ध धर्मावलम्बियों के आकर्षण का केन्द्र सारनाथ और रामलीला के लिए प्रसिद्ध रामनगर इससे सटे हुए क्षेत्र हैं।

डॉक्टर मोतीचंद ने वाराणसी पर आधारित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'काशी का इतिहास' में इस नगर के संबंध में लिखा है, 'बनारस उस सभ्यता का सर्वदा परिपोषक रहा है, जिसे हम भारतीय सभ्यता कहते हैं और जिसके बनाने में अनेक मत-मतान्तर और विचारधाराओं का सहयोग रहा है। यह नगरी हिन्दू विचारधारा की तो केन्द्रस्थली थी ही पर इसमें सन्देह

नहीं कि बुद्ध के पहले भी यह ज्ञान का प्रधान केन्द्र थी। अशोक के युग से वहां बौद्ध धर्म फूला फला । तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जन्मस्थली होने के कारण जैन भी नगरी पर अपना अधिकार मानते हैं । इस तरह धर्मों और संस्कृतियों का पवित्र संगम बन जाने पर वाराणसी भारत के कोने-कोने में बसने वालों का पवित्र स्थल बन गई। अगर एक सीमित स्थल में सारे भारत की झांकी लेनी हो तो बनारस ही ऐसा शहर मिलेगा। विविध भाषाओं के बोलने वाले, नाना वेश-भूषाओं से सुसज्जित तथा तरह-तरह के भोजन करने वाले तथा रीति-रिवाज मानने वाले वाराणसी में केवल एक ध्येय यानी तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से मालूम नहीं कितने प्राचीन काल से इकट्ठे होते रहे हैं और आज दिन भी इकट्ठे होते हैं।'

वाराणसी पर कई पुस्तकों के लेखक डॉक्टर भानुशंकर मेहता अपनी पुस्तक 'सो काशी सेइअ कस न' में लिखते हैं, ' आदिकाल से यह ज्ञानयज्ञ की, शास्त्रार्थ की, पंडितों की, संतों महात्माओं की नगरी रही है। यहीं पतंजलि ने योग विद्या सिखाई थी। इसी नगर ने श्री कृष्ण को गुरु

काश्य संदीपन दिए। बुद्ध को प्रथम शिष्य दिए, शंकर को ज्ञान दिया। यहां आज भी पांच विश्वविद्यालय हैं, अनेक कालेज-स्कूल मदरसे पाठशालाएं हैं। आज भी गुरू शिष्य परम्परा यहां जीवित है। साहित्य, भाषा-बोली, पत्रकारिता सभी के लिए शोध सामग्री उपलब्ध है।'

वाराणसी की साहित्यिक परंपरा अत्यन्त प्राचीन रही है। इस परंपरा ने हिन्दी साहित्य को कई महत्त्वपूर्ण साहित्यकार और हिन्दी को कई महत्त्वपूर्ण रचनाएं और कृतियां दी हैं। अकेले इस एक नगर ने हिन्दी साहित्य को जितना कुछ दिया है वह काफी अधिक है। अगर हिन्दी साहित्य के इतिहास से वाराणसी की देन को हटा दिया जाए तो उसमें से बहुत कुछ निकल जाएगा। कबीर,रैदास, तुलसीदास जैसे भक्तिकाल के प्रसिद्ध कवियों से लेकर भारतेन्दु, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, देवकीनंदन खत्री, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और फिर बाद के नामवर सिंह,विद्यानिवास मिश्र, केदारनाथ सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, शिवप्रसाद सिंह, शुकदेव सिंह, शंभुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, काशीनाथसिंह, बच्चन

सिंह, अब्दुल बिस्मिल्लाह, ज्ञानेंद्रपति जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारों का जुड़ाव वाराणसी से जन्मभूमि या फिर कर्मभूमि के रूप में रहा है।

साहित्य की तरह वाराणसी की संगीत परंपरा भी अत्यन्त समृद्ध रही है। यह शहर संगीतकारों का गढ़ रहा है।कबीरचौरा और रामापुरा जैसे छोटे-छोटे मोहल्ले पद्म अलंकरणों से सम्मानित कई दिग्गज कलाकारों के क्षेत्र रहे हैं। इनकी गलियों में कहीं तबला बज रहा होता है तो कहीं गायन हो रहा होता है। तबले और कथक में बनारस का अपना घराना रहा है तो हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के कई दिग्गज गायक-गायिकाओं की यह जन्म या कर्मभूमि रही है। डॉक्टर भानुशंकर मेहता वाराणसी के सांगीतिक परिदृश्य की चर्चा करते हुए लिखते हैं, 'यह कलाकारों की नगरी है-आदि काल से न जाने कितने संगीत साधक यहां हुए जिनका जोड़ा नहीं है, किस-किस के नाम गिनाएं....यह भैया साहब, मोइजुद्दीन, संतू बाबू, भुनीमजी, विलायतू-बिस्मिल्लाह, बड़े-छोटे रामदास, बिरजू-बीरू-अनोखे गोकुल जी-रामसहाय कंठे-हुस्ना-मैना - राजेश्वरी विद्याधरी-बड़ी छोटी मोती-सिद्धेश्वरी, रामाजी, रसूलन, किसन- गुदई - गिरजा -

लालमणि-गोपाल-हनुमान- बैजनाथ- नारायण-रामजी, लल्लू-सुखदेव महाराज-सितारा-तारा-अलकनंदा - गोपी-मोहन- माधुरी-राम- अन्नपूर्णा-ज्योतिन-आशू, राजन-साजन, महादेव-अमरनाथ- पशुपतिनाथ, श्रीचन्द्र और संगीत मार्तण्ड पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर की नगरी है- यह मुश्ताक, रविशंकर, उदयशंकर, एन. राजम् की नगरी है। अनेकानेक, गायक वादक-ललितकला विशारद लोगों की नगरी है-इनकी अपनी कलम है-अपनी शैली है-लोक में भी, शास्त्र में भी।'

वाराणसी विद्वानों की नगरी रही है। अपनी तमाम प्रसिद्धि के बावजूद ये विद्वान बहुत ही सादगी और फक्कड़ी के साथ वाराणसी में जीवनयापन करते रहे हैं। प्रसिद्ध कवि त्रिलोचन ने बनारस पर अपने संस्मरण काशी करवट में लिखा है-' कमर में अंगोछा लपेटे, एक अंगोछा कंधे पर डाले एक साधारण आदमी चला जा रहा है गंगा की तरफ, लोग हैं कि उसकी चरण धूलि ले रहे हैं। यह दृश्य बनारस में ही संभव है।'

प्राचीन काल में वाराणसी

में वेद शिक्षण

प्रसिद्ध विद्वान डॉक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं, "काशी का एक पुराना नाम ब्रह्मवड्ढन भी मिलता है। इसका अर्थ वही है जिसे आज ज्ञानपुरी कहते हैं। यों तो जातक युग में ही काशी ने यह ख्याति प्राप्त कर ली थी, पर इसका पूरा विकास तो गुप्तकाल में हुआ जब स्वर्ण युग की प्रारण वन्त संस्कृति में संस्कृत भाषा और साहित्य का अभूतपूर्व अभ्युत्थान सामने श्राया । काशिका की रचना उसी का फल था, अर्थात् उसी समय से काशी के विद्वानों में पाणिनीय व्याकरण का पठन-पाठन गहरी जड़ पकड़ गया । लेकिन काशी जैसे विद्या केन्द्र ने जिस क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति की वह वेदों का अध्य- यनाध्यापन था । इस सम्बन्ध को जो मुहरें मिली हैं वे भारतीय शिक्षा के इतिहास में बेजोड़ हैं। उनसे ज्ञात होता है कि वहाँ ऋग्वेद के बृहवृचचरण का बहुत बड़ा विद्यालय था। उस मुद्रा की रचना काशी के कल्पनाशील कलाकारों की प्रतिभा का नमूना है। मुद्रा पर एक आश्रम अंकित है। उसके मध्य में जटाधारी प्राचार्य खड़े हैं और अपने हाथ के कमण्डल जल से श्राश्रम के वृक्षों को सींच रहे हैं। दोनों ओर ब्रह्मचारी भावमुद्रा में खड़े हैं। यहीं

काशी का ब्रह्मवर्धन स्वरूप था । ऋग्वेद के समान कृष्णयजुर्वेद के लिये चरक चरण, सामवेद के लिये छन्दोगचरण, चारों वेदों के लिये चतुविद्य, और तीन वेदों के लिये विविद्य विद्यालय थे। संभवतः 'श्री सर्वत्र-विद्य' नामक विद्यालय वेदांगों और शास्त्रों की शिक्षा के लिए था। काशी का जैसा अनुपम उत्कर्ष गुप्तकाल में हुआ वैसा फिर कभी देखने में नहीं आया । धर्म, ज्ञान, और अर्थ इन तीनों का अपूर्व समन्वय इस युग की काशी में हुआ और नगर के जीवन पर धर्म तीर्थ, मोक्षतीर्थ और प्रथतीर्थ के प्रादर्शों की छाप सदा के लिये अंकित हो गई जो प्राजतक काशी के मनस्वी नागरिकों को अनु- प्राणित करती है।'

'काशी का इतिहास' में लिखा है, 'वाराणसी केवल तीर्थ मात्र ही न होकर संस्कृत शिक्षा का एक प्रधान केन्द्र थी। जातको में यहाँ की शिक्षा प्रणाली का उल्लेख है। गुप्त युग में नगरी वैदिक शिक्षा की केन्द्र बन गयी तथा गाहरवाल युग में यहाँ के पण्डित विद्यार्थियों को अपने यहाँ रखकर अनेक विषयों में शिक्षा देते थे। लगता है कि आरम्भिक मुस्लिम युग में इस शिक्षा-त्रम को धक्का लगा, पर अकबर के युग से आज तक

बनारस में संस्कृत की शिक्षा प्रबाध गति से चल रही है। यहां के पण्डितों ने अधिकतर प्राचीन ग्रन्थों पर टीकाएं लिखी और आधुनिक दृष्टि से उनक, दृष्टिकोण संकुचित भी नहीं कहा जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृत भाषा की रक्षा और प्रचार में बनारस के पण्डितों का बड़ा हाथ रहा है। यह उन्हीं का प्रभाव या कि देश के कोने कोने से विद्यार्थी काशी आकर ज्ञानार्जन करने में अपना गौरव समझते थे।'

वाराणसी प्राचीन काल से शिक्षा और ज्ञानार्जन का केन्द्र रहा है। मुगलों के समय में वाराणसी की यात्रा करने वाले प्रसिद्ध चिकित्सक फ्रैंकोस बर्नियर ने अपनी पुस्तक 'ट्रवेल्स इन मोगल इम्पायर' (आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी,1914) में इस नगर के प्राचीन शिक्षा भूमि के रूप में वर्णन करते हुए लिखा है- 'गंगा के किनारे सुंदर स्थिति में बसे बनारस शहर को मानविकी का सुलभ स्कूल कहा जा सकता है। यह भारत का एथैस है जहां ऐसे ब्राह्मणों और साधकों का बसेरा है जो केवल अध्ययन के लिए समर्पित हैं। इस नगर में औपचारिक विद्यालय और कक्षाएं नहीं हैं जैसी हमारे विश्वविद्यालयों में होती हैं, बल्कि प्राचीन युग वाले स्कूल हैं

जिनमें शिक्षक नगर के विभिन्न हिस्सों में निजी- आवासों में रहते हैं या वे प्रधान रूप से बाहरी भागों के बगीचों में रहते हैं जिनके स्वामी महाजनों ने उन्हें वहां रहने की सुविधा दे रखी है। इनमें से कुछ के चार, कुछ के छह या सात तो अधिक प्रसिद्ध शिक्षक के 12 या 15 शिष्य होते हैं और यह संख्या प्रायः सर्वाधिक है। शिष्यों के लिए अपने गुरु के साथ 10 या 12 वर्ष तक रहना सामान्य बात है जिस अवधि में शिक्षण का कार्य बहुत मंद गति से चलता रहता है। कारण यह है कि ये असहाय स्थिति के होते हैं। इनके भीतर हमारी तरह कोई हड़बड़ी का भाव नहीं होता क्योंकि इन्हें असाधारण उपलब्धि, किसी विशेष पुरस्कार या पारिश्रमिक मिलने की उम्मीद नहीं रहती। ये बहुत मंद गति से अध्ययन जारी रखते और समृद्ध व्यापारियों द्वारा दी जाने वाली खिचड़ी खाकर गुजारा करते हैं। उन्हें सर्वप्रथम संस्कृत सिखाया जाता है, पंडितों की वह भाषा, जो हिन्दुस्तान की आम बोलचाल की भाषा से अलग है।'

प्राचीन काल में वाराणसी की शिक्षा व्यवस्था का पता अन्य पुस्तकों से भी चलता है। वाराणसी पर लिखी पुस्तकों में उल्लेख मिलता है कि वाराणसी प्राचीन काल से ही शिक्षा का केन्द्र रही है और कभी-कभी तक्षशिला तक से लोग विद्याध्यन के लिए आते थे। उन दिनों शिक्षा की ऐसी व्यवस्था थी कि विद्यार्थी आश्रमों में गुरू के पास रहकर अध्ययन किया करते थे। पढ़ाने के साथ ही इन आश्रमों में विद्यार्थियों के वस्त्र-भोजन आदि का प्रबन्ध भी रहता था और इसके लिए राज्य से आश्रमों को सहायता की व्यवस्था थी।

पुस्तकों में वाराणसी की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का उल्लेख इस रूप में आता हैः

महमूद गजनवी के आक्रमण के बाद बनारस संस्कृत शिक्षा का इसलिए एकमात्र केन्द्र हो गया क्योंकि पश्चिम भारत, पंजाब और कश्मीर से संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान यहां आकर बसने लगे। जब मुसलमानों का काशी पर अधिकार हो गया तब यहां शिक्षा की क्या व्यवस्था थी इसके बारे में तो ठीक ठीक पता नहीं है, पर चौदहवीं सदी के एक उल्लेख से

पता चलता है कि महम्मद तुगलक के समय में भी वाराणसी शिक्षा का प्रधान केन्द्र थी और यहां धातुवाद, रसवाद, तर्क, नाटक, ज्योतिष, साहित्य इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी। सिकंदर लोदी के अत्याचारों से भी बनारस के पंडितों और शिक्षा सस्थाओं को काफी नुकसान पहुंचा होगा इसमें सदेह नहीं ।बनारस में मुगलों के पहले के पंडितों के इतिहास के बारे में हमें बहुत कम जानकारी है, पर अकबर काल में शांति स्थापित होने के बाद बनारस में पुनः धीरे-धीरे पंडितों का शासन जमने लगा और मुगल युग के संस्कृत साहित्य के इतिहास में काशी के पंडितों का बहुत बड़ा हाथ रहा। इस युग की हजारों हस्तलिखित पुस्तकों की जांच पड़ताल के बाद यह पता चलता है कि उनमें से अधिकतर बनारस के पंडितों द्वारा लिखी गयी, पर सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि इन पुस्तकों के लेखक अधिकतर एतद्देशीय कान्यकुब्ज और सरयूपारी ब्राह्मण न होकर दक्षिण और महाराष्ट्र के ब्राह्मण थे।

प्राचीन काल में संस्कृत शिक्षा के सम्बन्ध में 'काशी का इतिहास' में इस

प्रकार विवरण मिलता हैः

अट्ठारहवीं सदी में काशी में संस्कृत शिक्षा का वहीं प्रबन्ध था जो मुगल काल में या उसके भी पहले से चला आ रहा था। विद्यार्थियों को काशी के गुरू निःशुल्क पढ़ाते थे साथ ही उनके भोजन और रहने का प्रबन्ध भी करते थे। इसमें जो कुछ उनका व्यय होता था उसको पूरा करने के लिए महाजनों तथा राजाओं की सहायता अपेक्षित होती थी । जान पड़ता है, यह सहायता पर्याप्त रूप में मिलती थी। जब से पेशवों का बनारस से सम्बन्ध हुआ तब से तो दक्षिणी पण्डितों के सहायतार्थ महाराष्ट्र तथा मराठों की दूसरी अमलदारियों से भी अन्नसत्र और पाठशालाएं चलाने के लिए काफी रुपए आते रहे। अट्ठारहवीं सदी के अन्त में अंग्रेजों ने बनारस संस्कृत कॉलेज खोलने की सोची। कॉलेज चलाने की बात पहले पहल किसके दिमाग में आई यह कहना तो कठिन है। संस्कृत कॉलेज के प्रथम प्राचार्य काशीनाथ लॉर्ड मॉर्निंगटन के नाम अपने 1799 ईस्वी वाले पत्र में लिखते हैं कि बनारस संस्कृत कॉलेज चलने की बात पहले उन्होंने ही चलाई। उनके इस कथन में कितना तथ्य है यह तो नहीं जाना जा सकता पर उनका यह दावा एक दम से टाला भी नहीं जा

सकता। यह भी हो सकता है कि चार्ल्स बिलकिंस ने, जिन्हें संस्कृत पढ़ने के लिए एक पण्डित ढूंढ़ने में बड़ी कठिनाई पड़ी, यह सुझाव वारेन हेस्टिंग्स के सामने रखा हो। काशीनाथ पण्डित का अपने पत्र में यह कहना है कि अपनी कलकत्ता यात्रा कॉलेज के सम्बन्ध में प्रस्ताव रखने के लिए उन्हें स्थगित करनी पड़ी और इसके बाद उन्होंने यह प्रस्ताव जोनेथन डंकन के पास रखा। पर यह बात किसी दूसरे कागज पत्र में नहीं मिलती। जो भी हो, पहली जनवरी 1792 में एक पत्र द्वारा डंकन ने बनारस में संस्कृत शिक्षा के लिए एक कॉलेज खोलने का प्रस्ताव रखा । डंकन का कॉलेज स्थापना करने में पहला उद्देश्य तो यह था कि पण्डितों और विद्यार्थियों की सहायता से अनेक विषयों पर संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकें इकट्ठी हो जाएं दूसरा यह कि इससे अंग्रेजों की हिन्दुओं में ख्याति बढ़ेगी और कालेज से ऐसे पण्डित निकल सकेंगे जो हिन्दू कानून को समझने में अंग्रेज जजों की सहायता कर सकेंगे। कॉलेज चलाने में केवल चौदह हजार साल का खर्च था । गवर्नर जनरल ने तुरन्त उनकी बात मान ली और कॉलेज के खर्च के लिए बीस हजार की मंजूरी दे दी । समयानन्तर में संस्कृत पाठशाला की स्थापना हो

गई। इसमें पढ़ाने के लिए आठ पण्डित रखे गए और काशीनाथ प्रधान आचार्य नियुक्त हुए। इनका वेतन दो सौ रुपया मासिक नियत किया गया । इस पाठशाला की देखरेख का भार बनारस के रेजिडेंट और उसके डिप्टी पर छोड़ दिया गया। डंकन ने इस बात का पूरा यत्न किया कि ब्राह्मण पण्डित, जिन पर इस पाठशाला की सफलता निर्भर थी, किसी तरह से अप्रसन्न न हो जाएं। इसके लिए पाठशाला में ब्राह्मण पण्डित ही नियुक्त किए गए और यह भी निश्चय किया गया कि स्मृति और धर्म-शास्त्र के परीक्षक भी ब्राह्मण ही हों। इस पाठशाला के पहले सात साल के कागज पत्र नहीं मिलते। डंकन 1795 में बनारस से बम्बई चले गए । 1798 में पाठशाला के प्रबन्ध का भार एक कमेटी पर आ पड़ा, जिसमें बनारस के कमिश्नर सेमुअल डेविंस और कैप्टन विलफोर्ड थे। डेविंस भारतीय ज्योतिष में दखल रखते थे और विलफोर्ड की संस्कृत पढ़ने में बड़ी रुचि थी। विलफोर्ड इस कमेटी के सेक्टरी नियुक्त किए गए। कैप्टन विलफोर्ड पहले पहल अंग्रेजी जिलों और अवध राज की बीच की पैमाइश के लिए नियुक्त किए गए थे। पर जब इस काम में नवाब के आदमी रोड़े अटकाने लगे तब डंकन ने सर जॉन शोर को लिखा कि

वे विलफोर्ड को बनारस में रह कर अपना अध्ययन समाप्त करने की आज्ञा दे दें। सर जॉन शोर ने डंकन की यह बात मान ली और विलफोर्ड को उनकी तनख्वाह के अलावा पढ़ने के लिए सामग्री इत्यादि इकट्ठा करने के लिए छह महीने का वजीफा भी स्वीकार कर लिया।

वेदशिक्षण की गुरुकुल परंपरा एवं वर्तमान स्थिति

वाराणसी में कई विद्वान, गुरू घरों, पाठशालाओं में वेद की शिक्षा देते हैं। शिक्षण की यह परम्परा प्राचीन गुरुकुल परम्परा की तरह है। वाराणसी में गुरुकुल प्रणाली से वेद शिक्षण करने वाले कई संस्थाएं, पाठशालाएं और गुरु हैं। यहां वर्षों से वेद की विभिन्न शाखाओं की शिक्षा दी जा रही है। यहां वाराणसी तथा दूसरे नगरों से बाल, किशोर और युवा वेद का अभ्यास करते हैं और शिक्षा ग्रहण करते हैं। प्रसिद्ध कथाकार चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने वाराणसी पर आधारित एक आलेख में कभी इसी वेद शिक्षण का जिक्र किया था जिसका भाव था कि सुबह-सुबह ही नींद खुल जाती है क्योंकि वेद शिक्षण का सस्वर गान कानों में पड़ने लगता है। वाराणसी के कई इलाकों में यह स्थिति आज भी है। ऐसे गुरुकुलों को सरकारों या संस्थाओं से प्रायः नाम मात्र की सहायता ही मिलती है। मुख्यतः निजी प्रयासों से वाराणसी के ऐसे गुरुओं और विद्वानों ने इस सांस्कृतिक धरोहर को संभाल कर रखा है और इसे लुप्त होने से बचाने के लिए अगली पीढ़ी को सौप रहे हैं।

वाराणसी की शिक्षा व्यवस्था और पाठशालाओं पर कार्य करने करने वाले वरिष्ठ लेखक एवं पत्रकार श्री हिमांशु उपाध्याय बताते हैं,' उन्नीसवीं सदी के आरंभ में जगतगंज स्थित शिवालय में बाबू कवींद्र नारायण सिंह की पाठशाला का उल्लेख मिलता है। इसी मुहल्ले में दर्शनानंद पाठशाला और दूध विनायक में योगेश्वर शास्त्री अपनी पाठशाला चलाते थे। अगस्त्य कुंडा में कैलाशचंद्र शिरोमणि की संस्कृत पाठशाला मशहूर थी। सन् 1915 में काशी में दरभंगा नरेश लक्ष्मीश्वर सिंह ने निगमागम संस्कृत विद्यालय की स्थापना की। इसके पहले प्रधानाचार्य पंडित कमलापति त्रिपाठी के नाना महामहोपाध्याय पंडित शिवकुमार शास्त्री रहे। इसी काल में मीरघाट में निर्मल संस्कृत पाठशाला का भी उल्लेख मिलता है। दूध विनायक मुहल्ले में हरिहर नामक नेपाली युवक ने संस्कृत मोह में पाठशाला की नींव रखी। बाद में इसे नेपाली धर्म प्रचारिणी सभा ने संचालित किया। यह पाठशाला कुछ दिन मंगलागौरी एवं बालाजी के मंदिर में भी चली। ब्रह्मनाल में कोलकाता के प्रमुख व्यवसायी रतन लाल सुरेका ने सन् 1959 में संस्कृत विद्यालय की स्थापना की। विद्यालय के लिए सुरेका परिवार ने वहां स्थित अपना मकान अपने गुरु

प्रहलाद जोशी को दान में दे दिया। पंडित जोशी ने रतन लाल सुरेका की माता भागीरथी की स्मृति में स्कूल को आगे बढ़ाया। बांसफाटक स्थित सत्यनारायण सांग्वेद पाठशाला की नींव कोलकाता निवासी बांगला परिवार ने (सन् 1945 में) रखी। मीरघाट मुहल्ले में मारवाड़ी संस्कृत कालेज की स्थापना वैद्यनाथ खंडेलवाल ने सन् 1917 में की।' श्री उपाध्याय बताते हैं कि दुर्गाकुंड स्थित धर्म संघ संस्कृत महाविद्यालय सन् 1940 में स्वामी करपात्री जी ने प्रारंभ की। लाहौरी टोला में सन् 1953 में निर्मल संस्कृत पाठशाला की नींव महंत गुरुदीप सिंह वेदांती ने रखी। सन् 1916 में टीकमणि संस्कृत कालेज की स्थापना का उल्लेख मिलता है। सकरकंद गली में सेठ गोपी राम टीकमणि ने इसकी स्थापना की। संन्यासियों को शिक्षित करने के उद्देश्य से काशी में सन् 1906 में संन्यासी संस्कृत पाठशाला स्वामी गोविंद नंद द्वारा आरंभ की गई। पंडित देवी प्रसाद शुक्ल इसके प्रथम प्रधानाध्यापक थे। बिहार राज्य के बनैली राज की रानी चंद्रावती ने सन् 1929 में कचौड़ीगली में श्यामा संस्कृत विद्यालय की स्थापना की। श्री नंदन झा और उलानंद झा इस विद्यालय के प्रथमतःप्रधानाध्यापक नियुक्त किए गए। '

श्री उपाध्याय बताते हैं,' आस भैरव मुहल्ले में सन् 1952 में गुरुनानक के पुत्र श्रीचंद ने श्रीचंद्र पाठशाला की स्थापना की। पहले पहल इसका नाम चंद्र भव विद्यापीठ रखा गया। बाद में इसे चंद्र महाविद्यालय कर दिया गया। नगवा मोहल्ले में पंडित शिवकुमार शास्त्री की स्मृति में पंडित गोविंद चंद्र पाण्डेय ने सन् 1951 में नगवा संस्कृत पाठशाला की स्थापना की। पंडित सेवामूर्ति संस्कृत पाठशाला मिश्र पोखरा मोहल्ले में सन् 1957 में खोली गई। इसकी स्थापना महामंडलेश्वर स्वामी नरसिंह गिरि ने किया था। इसी काल में नगवा में स्वामी देवराजाचार्य ने अपना मकान खरीदकर देवराज संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की। रामानुजी सम्प्रदाय के स्वामी वासुदेवाचार्य ने भी यहां अपनी भूमि पर वासुदेवाचार्य संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की। सन् 1926 में मौरघाट में जोखीराम मटरूमल गोयनका संस्कृत विद्यालय की स्थापना की गई। इसके प्रथम आचार्य चंडी प्रसाद शुक्ल बनाए गए। यह संस्था बाद में ललिता घाट पर संस्थापित की गई। सन् 1920 में रामघाट मुहल्ले में वल्लभराम शालिग्राम पाठशाला की स्थापना काशिराज परिवार

के सहयोग से की गई। पंडित लक्ष्मण शास्त्री इसके प्रारंभिक आचार्य हुए। सन् 1931 में पंडित राजेश्वर शास्त्री द्रविड़ ने भी विद्यालय को अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। इसकी स्थापना में वल्लभ राम मेहता (कोलकाता) का भी बहुत बड़ा योगदान था। हालांकि स्थापना का श्रेय तो बिहारी लाल मेहता को जाता है किंतु विद्यालय का नामकरण उन्होंने अपने मामा वल्लभ राम शालिग्राम के नाम से कर दिया। काशी में इन प्राचीन संस्कृत पाठशालाओं के अलावा अनेक संस्कृत पाठशालाएं वर्तमान में कार्य कर रही हैं।'

वाराणसी की कुछ अन्य प्राचीन पाठशालाओं की जानकारी भी मिलती है। इनमें से कई वर्तमान में बंद हो चुकी हैं। वेद एवं संस्कृत का पठ्न-पाठ्न कराने वाली वाराणसी की ऐसी कुछ प्राचीन पाठशालाएं इस प्रकार हैंः

- कान्यकुब्ज पाठशाला (दशाश्वमेध)

- मुमुक्षु भवन पाठशाला (अस्सी)

- माहेश्वर पाठशाला (अस्सी)

- नन्हे बाबू पाठशाला (ठठेरी बाजार)

- परमहंस पाठशाला (लाहौरी टोला)

- रामदास चुन्नीलाल पाठशाला (त्रिपुरा भैरवी)

- दुर्गा पाठशाला (भदैनी)

- स्याद्वाद जैन पाठशाला (भदैनी)

- बाल पाठशाला (भदैनी)

- गोयनका पाठशाला (बुलानाला)

- ज्ञानोदय पाठशाला (चेतगंज)

- सतुआ बाबा संस्कृत पाठशाला (मणिकर्णिका)

- काशिक सांग्वेद विद्यालय (नगवां),

- संन्यासी संस्कृत पाठशाला (बांसफाटक)

- ढुंढिराज गणेश पाठशाला (बांसफाटक)

- सत्य सांग्वेद पाठशाला (बांसफाटक)

- शरत कुमारी संस्कृत पाठशाला (गोदौलिया)

- उदासीन पाठशाला (मीरघाट)

- विश्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम (रामघाट)

- ब्रह्मचर्य आश्रम (रामघाट)

- सइया पाठशाला (नगवा)

- सरयूपारीण पाठशाला (गोलगड्डा)

- कुशवाहा क्षत्रिय पाठशाला (मध्यमेश्वर)

- चतुष्पाणी पाठशाला (दशाश्वमेध)

- प्रमोद पाठशाला (ईश्वरगंगी)

- नाथूराम पाठशाला (कालिका गली)

- वल्लभ देशी (चौखंभा)

- गोविंद पाठशाला (बड़ा हनुमान घाट)

- गोविंद आयुर्वेदिक पाठशाला (गढ़वासी टोला)

- रानी विजय विद्यालय (ब्रह्मनाल)

- खेमका विद्यालय (त्रिपुरा भैरवी)

- रामानुज विद्यालय (प्रहलाद घाट)

- सत्यनारायण पाठशाला (सरस्वती फाटक)

- दाऊजी पाठशाला (सिगरा)

- वैजनाथ संस्कृत पाठशाला (चित्रघंटा)

- गोयनका पाठशाला, (ललिता घाट)

- मारवाड़ी संस्कृत पाठशाला (मीरघाट)

- गंगाधर पाठशाला (मीरघाट)

- चंद्र विद्यालय (आसभैरव)

- खेतान पाठशाला (भुतई इमली)

- माधव संस्कृत पाठशाला (सारंग तालाब)

- चंद्रावती श्याम पाठशाला (कचौड़ी गली)

- विशुद्धानंद विद्यालय (गोला गली)

- बिड़ला संस्कृत कालेज (लालघाट)

- हितकारिणी पाठशाला (नई बस्ती)

उज्जैन के महर्षि सांदीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान द्वारा वाराणसी के कई वेद विद्यालयों को अनुदान दिए जाते हैं तथा अध्यापकों के मानदेय की व्यवस्था की जाती है।

याज्ञवल्क्य काण्व

वेद पाठशाला,

सांगवेद विद्यालय

एवं अन्य

याज्ञवल्क्य काण्व वेद पाठशाला

वाराणसी के घासी टोला की गलियों में स्थित याज्ञवल्क्य काण्व वेद पाठशाला का इतिहास लगभग 125 वर्ष पुराना है। इसकी स्थापना स्वर्गीय वासुदेवाचार्य और स्वर्गीय रामाचार्य पुराणिक द्वारा की गयी थी। उस समय करीब 40 विद्यार्थी गुरुकुल पद्धति से इस पाठशाला में रहते हुए अध्ययन करते थे। उस समय बिजली तो नहीं थी, इसलिए तेल के दीये और गलियों में लगे लैम्पों के सहारे अध्ययन-अध्यापन का यह क्रम चलता था। पुराणिक परिवार के सदस्य बताते हैं कि तब विद्यार्थियों की नींद रात्रि दो बजे तब खुल जाती थी जब गुरुजी पानी निकालने के लिए कुएं में बाल्टी डालते थे। गंगा स्नान तथा अन्य दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर वे करीब साढ़े तीन बजे अध्ययन में लग जाते थे। एक घनपाठी दशग्रंथी वैदिक और शास्त्री को तैयार होने में कम से कम 12 वर्षों का समय कड़े अनुशासन के साथ अध्ययन में लगाना होता। इस पाठशाला में काण्व शाखा का अध्ययन अध्यापन होता है और आज भी बड़ी संख्या में असम, कर्नाटक, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आन्ध्र

प्रदेश सहित विभिन्न प्रदेशों के छात्र यहां रहते हुए अध्ययन करते हैं। काण्व शाखा के संरक्षण के लिए पुराणिक परिवार द्वारा महाराष्ट्र, गुजरात में विद्वानों को भेजकर तीन-तीन महीने तक वेदाध्ययन कराते हुए पाठशाला का विस्तार किया गया है।

परिवार से मिली जानकारी के अनुसार, याज्ञवल्क्य काण्व वेद पाठशाला के मुख्य गुरू रहे वेदमूर्ति लक्ष्मीकान्त रामाचार्य पुराणिक शुक्लयजुर्वेद की काय शाखा के विद्वान थे तथा अण्णा साहेब उपनाम से पहचाने जाते थे। उनके पूर्वज इलकल ग्राम तालुका बागलकोट, जिला बिजापुर (कर्नाटक) के निवासी थे। लक्ष्मीकान्त जी के दादाजी लगभग 100 से 110 वर्ष पूर्व इलकल ग्राम से काशी आए थे। तभी से पुराणिक परिवार काशीवासी हो गया। अण्णा साहेब के पूर्वज विख्यात विद्वान् थे। इनके एक चाचा गोविन्दाचार्यजी अपने जमाने के जाने-माने वैयाकरण थे, तो दूसरे वासुदेवाचार्य उर्फ मारुति भट्ट उत्कृष्ट वैदिक तथा श्रीकृष्ण शास्त्री नामक तीसरे चाचा वेंकटेश्वर छापाखाना मुम्बई में हेड पण्डित के रूप में कार्यरत थे। लक्ष्मीकान्तजी के पिताजी का पूरा नाम वेदमूर्ति रामाचार्य

पाण्डुरंगाचार्य पुराणिक था। रामाचार्यजी ने संहिता पदक्रम का अध्ययन वेदमूर्ति महादेव भट्ट पेठकर जी के पास तथा जटामालादी अष्टविकृतियों का अध्ययन वेदमूर्ति भटभट पिपले जी के पास किया था। श्री रामाचार्यजी एवं श्री मारुति भट्ट जी अपने निवास स्थान की तीसरी मंजिल पर बैठकर विद्यार्थियों संथा (पाठ) दिया करते थे। जबकि विद्यार्थी वर्ग प्रथम तल में बैठकर अध्ययन किया करते थे। अध्ययन इतने उच्च स्तर में होता था कि बीच की (दूसरी) मंजिल में रहने वाली महिलाओं को सुन-सुनकर पाठ कंठस्थ हो जाता था तथा कभी-कभी कोई एक विद्यार्थी गलती करता था तो ये महिलाएं उसे टोकती थीं। बातचीत से पता चलता है कि पुराणिक घराने की आज तक की शिष्य परम्परा लगभग 450 शिष्यों की होते हुए इनमें अकेले रामाचार्य जी द्वारा तैयार किए गए शिष्यों की संख्या लगभग 150 है।

पुत्र बताते हैं कि लक्ष्मीकान्त जी का जन्म काशी में पौष शुद्ध 15 (पूर्णिमा) संवत् 1989 दिसम्बर (सन् 1932) को हुआ था। तीसरे ही वर्ष लिखने का अभ्यास करने वाले अण्णाजी का तीसरी कक्षा तक का

अध्ययन कड़े अनुशासन में हुआ था। आपने उपनयन से पूर्व ही प्रभृति षडंगों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था। 17वें वर्ष तक आप प्रतिदिन लगभग 18 घण्टा अध्ययन किया करते थे। इनका सम्पूर्ण अध्ययन अपने पिता के सान्निध्य में हुआ था। संवत् 2008 में आपने साङ्गवेद विद्यालय की घनान्त सर्वोच्च वैदिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद सन् 1952 में वेदशास्त्रोत्तेजक सभा, पुणे की परीक्षा देकर 'वेदकोविद' पदवी (उपाधि) अर्जित की। आपके अध्ययन काल का उल्लेखनीय पक्ष यह कि आपने अपने पिताजी के मार्गदर्शन में काण्व संहिता के चालीस अध्याय केवल 11 महीनों में कंठस्थ कर परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उत्कृष्ट प्रतिभा प्रदर्शन के कारण पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री द्रविड़ जी ने आपको चांदी का एक रुपये का सिक्का पुरस्कार स्वरूप दिया था। श्रीधर शास्त्री कुटासकर और सखाराम शास्त्री गीते ये दोनों आपके शुरुआती सहाध्यायी थे। लक्ष्मीकान्तजी सन् 1957 से साङ्गवेद विद्यालय में अपने पिता की अनुपस्थिति के दौरान अध्यापन कार्य करते थे, बाद में सन् 1970 में नियमानुसार साङ्गवेद विद्यालय में ही

काण्ववेदाध्यापक के रूप में आपकी नियुक्ति हुई। जीवनपर्यन्त आप अध्यापन कार्य अविरल करते रहे।

पुराणिक परिवार के सदस्यों के अनुसार, याज्ञवल्क्य काण्ववेद पाठशाला जो कि गृह पाठशाला के रूप में चलती है, में परग्रामस्थ स्वशास्त्रीय विद्यार्थी यहां आकर रहते हुए वेदाध्ययन करते हैं। इनके निवास, भोजन और अध्ययनादि की सम्पूर्ण व्यवस्था होती है। सन् 1968 से अब तक लक्ष्मीकांत जी ने लगभग 150 विद्यार्थियों को तैयार किया।आपके सुयोग्य प्रख्यात छात्रों में ज्येष्ठ पुत्र श्रीकृष्ण ल० पुराणिक भी हैं, जो घनपाठी वेदाचार्य होते हुए वेदकोविद उपाधि प्राप्त कर चुके हैं और पं० रामचार्यजी द्वारा गुवाहाटी (असम) में स्थापित असम वेद विद्यालय जो कि राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है, में प्रधानाचार्य के रूप में कार्यरत रहे। रामचन्द्र रंगनाथ राजहंस ने भी घनान्त अध्ययन किया था और वे श्रीरंगम् के वेद भवन विद्यालय के प्राचार्य थे। इसके अतिरिक्त प्रोफेसर दिवाकर महापात्र जो जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय पुरी (उड़ीसा) के वेद विभाग के विभागाध्यक्ष हैं, श्री निवास ल० पुराणिक जो

कि पट्टाभिराम शास्त्री वेद मीमांसा अनुसन्धान केन्द्रम् में प्राध्यापक हैं, भी उनके शिष्य हैं। अनिरुद्ध पेठकर भी वर्तमान में अध्यापन कार्य कर रहे हैं तथा सर्वश्री दामोदर, जयराम, अनिल, अनन्त, यज्ञेश्वर, गिरीश आदि अन्य शिष्य हैं। वेदमूर्ति लक्ष्मीकान्त पुराणिक जी के सभी पुत्रों और पौत्रों ने भी पारम्परिक रूप से वेदाध्ययन किया है, पुराणिकजी ने घराने के संस्कारों से सभी को परिपूरित करने में कोई कमी नहीं की। अन्य पुत्रों में पाण्डुरंग आकाशवाणी वाराणसी में वरिष्ठ उद्घोषक, द्वारकानाथ पुराणिक, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में वेदाध्यापन करते हुए कर्मकाण्ड से जुड़े हुए हैं, जबकि रामचन्द्र (पुणे) और अरविन्द (मुम्बई) में साफ्टवेयर कम्पनी में वरिष्ठ पदों पर कार्यरत हैं। आपके तीन पुत्रों को भी उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी (संस्थान) का वेद पण्डित पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

वेदशिक्षा की इस गुरूकुल पाठशाला के सम्बन्ध में वेदाचार्य श्रीकृष्ण लक्ष्मीकान्त पुराणिक घनपाठी बताते हैं कि गंगातट पर बाबा भैरवनाथ के सान्निध्य में दुर्गाघाट, पंचगंगाघाट क्षेत्र की गलियों में शताधिक वर्षों

से कुछ वैदिकों के घरों में पाठशालाएं चलाई जाती रही हैं, जहां ब्रह्म मुहूर्त से गलियों में आवागमन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के कान में वेदध्वनि पड़ती रही क्योंकि मन्दिरों के घण्टा निनाद तथा सुमधुर वेद ध्वनि यह काशी की पहचान मानी जाती थी। घासीटोला मुहल्ले में याज्ञवल्क्य काण्व वेद पाठशाला के नाम से एक गृह पाठशाला स्वर्गीय वासुदेवाचार्य तथा स्वर्गीय रामाचार्य पुराणिक जी के द्वारा स्थापित की गई थी। उस समय लगभग 40 विद्यार्थी पाठशाला के छात्रावास में रहकर वेदाध्ययन एवं शास्त्राध्ययन करते थे। यह विद्यार्थी ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पालन करते हुए मध्याह्न काल में भिक्षा (मधुकरी) मांगकर अन्न ग्रहण करते थे। ऐसा सुना जाता था कि गुरूदेव ब्राह्म मुहूर्त में दो बजे उठ कर कुएं से पानी निकालकर शौच मुखमार्जनादि नित्य कर्म करते थे, उस कुएं की 'गराडी' की ध्वनि से सभी विद्यार्थियों को निद्रा से जागृत होना पड़ता था। तदनन्तर गंगा स्नान दर्शन करके आने तक (साढ़े तीन बजे) विद्यार्थियों को स्नान संध्यादि से निवृत्त होकर स्वाध्याय प्रारम्भ करना पड़ता था। अगर कोई छात्र निद्रामग्न हो तो वह दण्ड का भागी होता था। प्रातः ब्रह्म यज्ञादि से निवृत्त होने तक

स्वाध्याय, तदनंतर संथा, गुण्डिका अनंतर मध्याह्न में भिक्षाटन का क्रम चलता। अपराह्न में शास्त्राध्ययन सायंकाल संध्या, हवन, स्तोत्र पाठादि के अनन्तर पुनः आवृत्ति, शास्त्राध्ययन का क्रम चलता। उस समय काशी में बिजली का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। तैल प्रदीप में तथा गलियों में लगे हुए लैम्प के प्रकाश में अध्ययन का क्रम चलता। साथ ही साथ क्रीड़ा, व्यायाम भी होता था। वे बताते हैं कि इस प्रकार कड़े अनुशासन में बारह वर्ष तक अध्ययन करने के अनंतर एक घनपाठी दशग्रंथी वैदिक एवं शास्त्री तैयार होते थे। विशेषतः भारतवर्ष के महाराष्ट्र. आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात आदि प्रदेशों के छात्र अध्ययनार्थ आते थे।बाहर के छात्रों के समान ही घर के पुत्र पौत्रादिकों को भी उसी नियमानुसार अध्ययन कराया जाता था। उनके लिए कोई अलग व्यवस्था नहीं थी। सम्पूर्ण घर पाठशाला का ही स्वरूप होता था। नियमों का उल्लंघन करने वाले दण्ड के भागी होते थे। किन्तु छात्र को दण्ड देने के पश्चात् शुद्ध स्वयं प्रायश्चित्त स्वरूप आहार ग्रहण नहीं करते। छात्रों के बहुत कहने पर एक ही पात्र में स्वयं दाल, चावल इत्यादि सिद्धकर बिना लवण का आहार

ग्रहण करते। इससे छात्रों को भी पश्चात्ताप होकर कोई भी नियमों की अवहेलना करने का साहस नहीं करता था।

सांगवेद विद्यालय

वाराणसी में मेहता घाट के निकट स्थित सांगवेद विद्यालय एक शताब्दी पुराना विद्यालय है तथा वेद अध्ययन में निरंतर संलग्न है। इसका पूरा नाम वल्लभराम शालिग्राम सांगवेद विद्यालय है। इस प्राचीन विद्यालय में वेद शिक्षा प्राचीन गुरूकुल प्रणाली से ही प्रभावित है तथा विद्यार्थियों को अनुशासित जीवन व्यतीत करना पड़ता है। सीमित साधनों और विपरीत परिस्थितियों के बीच भी विद्यालय जिस प्रकार वेदों के संरक्षण में लगा है, सभी उसकी इस कार्य के लिए प्रशंसा करते हैं।

रणवीर संस्कृत विद्यालय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रणवीर संस्कृत विद्यालय भी प्राचीन पाठशाला का संवर्धित रूप है। श्री विभूषण ब्रह्मचारी की प्रेरणा से

जम्मू-कश्मीर के महाराजा श्री रणवीर सिंह ने 1883 में संस्कृत पाठशाला की स्थापना की थी। बाद में इसका नाम जम्मू-कश्मीर पाठशाला कर दिया गया। विद्यालय में आज आधुनिक विषयों के साथ ही वेद, ज्योतिष, दर्शन, व्याकरण की शिक्षा देते हुए प्राचीन ज्ञान एवं पारंपरिक शास्त्रों को संरक्षित किया जाता है।

वाराणसी के प्रसिद्ध

विद्वान, वेद पंडित,

संस्कृतज्ञ

-पंडित कैलाश चन्द्र शिरोमणि भट्टाचार्य (जन्म 1830)

-पंडित जयदेव मिश्र (जन्म 1844)

-पंडित तात्या शास्त्री (जन्म 1845)

-पंडित केशव शास्त्री मराठे (जन्म 1845)

-पंडित आदित्य राम भट्टाचार्य (जन्म 1847)

-पंडित दामोदर शास्त्री (जन्म 1849)

-पंडित राममिश्र शास्त्री (जन्म 1851)

-पंडित गंगाधर शास्त्री तैलंग (जन्म 1853)

-पंडित शिवकुमार शास्त्री (जन्म 1857)

-पंडित रामशास्त्री तैलंग (जन्म 1860)

-पंडित सुधाकर द्विवेदी (जन्म 1860)

-पंडित अन्यदाचरण ठाकुर तर्कचूड़ामणि (जन्म 1862)

-पंडित प्रभुदत्त अग्निहोत्री (जन्म 1864)

-पंडित प्रमथनाथ भट्टाचार्य तर्कभूषण (जन्म 1865)

-पंडित नारायणपति त्रिपाठी (जन्म 1873)

-पंडित लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़ (जन्म 1874)

-पंडित रामावतार शर्मा (जन्म 1877)

-पंडित लक्ष्मण शास्त्री तैलंग (जन्म 1880)

-पंडित नारायण शास्त्री खिस्ते (जन्म 1885)

-पंडित गोपीनाथ कविराज (जन्म 1887)

-पंडित विद्याधर शर्मा गौड़ (जन्म 1886)

-पंडित हाराणचंद्र भट्टाचार्य (जन्म 1889)

-आचार्य पट्टाभिराम शास्त्री (जन्म 1908)

-पंडित राजेश्वर शास्त्री द्रविड़ (जन्म 1908)

-पंडित वासुदेव द्विवेदी शास्त्री (जन्म 1913)

-पंडित विश्वनाथ शास्त्री दातार (जन्म 1922)

-पंडित बैकुंठनाथ उपाध्याय (जन्म 1927)

उपसंहार

वाराणसी ज्ञान की नगरी है, विद्या की नगरी है, धर्म और संस्कृति की, कला, साहित्य और संगीत की नगरी है। आधुनिकता के तमाम दबावों के बीच भी इस नगर ने अपनी प्राचीन परंपरा को सुरक्षित रखा है। आज भी वाराणसी की गलियों में परंपराओं के संरक्षण के प्रयासों को देखा जा सकता है।

वाराणसी में वेदशिक्षण की गुरुकुल परंपरा ऐसी ही एक प्राचीन परंपरा है। एक ओर वाराणसी में जहां विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में वेद के पारंपरिक ज्ञान का अध्ययन-अध्यापन होता है वहीं वेदशिक्षण की गुरुकुल प्रणाली प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था का स्मरण कराती है जहां दूर-दराज से विद्यार्थी आकर गुरू के साथ रहते हुए तथा अनुशासनपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए वेदों का अध्ययन करते हैं। आज जहां युवा पीढ़ी में वेदों के अध्ययन के प्रति किंचित रुचि कम हुई है, ऐसी परंपराएं इस विद्या के संरक्षण का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम भी हैं।

वैदिक ऋचाएं हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं। इन्हें भविष्य के लिए संरक्षित किए जाने और युवा पीढ़ी को इस धरोहर को सौपे जाने की जरूरत है। इस दिशा में वे विद्धान और गुरू महत्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं जो गुरुकुल परम्परा में वेद का शिक्षण दे रहे हैं। वाराणसी आरम्भ से ही वेद अध्ययन का केन्द्र रही है और वहां ऐसे कई गुरुकुल आज भी हैं। इन गुरुकुलों के बारे में जानना एक रोचक अनुभव से गुजरना है। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे गुरुकुलों की सराहना की जाय।

रीना पराड़कर

28-6/ ICH-Scheme/68/2014-15/12798

रीना पराड़कर

के.31 / 74,

चंवर गली, भैरवनाथ,

वाराणसी-221001

bapatreena@gmail.com

चित्र वीथिका

पुराणिक निवास